

## देर से मिला न्याय,.....

□ मनोहर बिल्लौरै

इस टिप्पणी के लेखक मध्यप्रदेश के एक अनुदानप्राप्त अशासकीय विद्यालय में कार्य करते हैं। तीन साल पहले मध्यप्रदेश सरकार ने इन विद्यालयों का अनुदान प्रति वर्ष 20 प्रतिशत घटाने का निर्णय लिया और पांच साल में पूरा समाप्त कर देने का। इसके साथ ही सरकार ने एक आदेश और निकाला कि निजी संस्थाएं शिक्षा-शुल्क में वृद्धि कर सकती हैं जिससे शिक्षक-कर्मचारियों को वेतन दिया जा सके।

अशासकीय संस्थाओं में इस आदेश का अनुपालन तुरंत हुआ। फीसें दोगुनी-तिगुनी हो गयीं। किन्तु प्रबंधकों ने वेतन उतना ही देना जारी रखा जितना सरकार ने अनुदान दिया। मंहगाई भत्ते, कन्ट्रीब्यूटरी पी. एफ. की राशि भी इन शिक्षकों के खाते में जमा होनी बंद हो गयी। पिछले तीन साल से वेतन वृद्धियां बंद हैं जबकि इससे पूर्व इन विद्यालयों के शिक्षक प्रबंधकों से पांचवे वेतन आयोग की सिफारिशें लागू करने की मांग कर रहे थे। इस स्थिति को लेकर शिक्षक-संगठनों ने उच्च न्यायालय का द्वार खटखटाया। उच्च न्यायालय ने शिक्षकों के पक्ष और मध्यप्रदेश राज्य सरकार के विरुद्ध फैसला दिया। अब मध्य प्रदेश सरकार उच्चतम न्यायालय में चली गयी है। मामले का निर्णय कब तक होगा, कहा नहीं जा सकता।

इस टिप्पणी में लेखक ने उक्त अशासकीय विद्यालयों के शिक्षकों की मनःस्थिति को बयान किया है। कुछ और राज्य सरकारें भी ऐसी संस्थाओं का सरकारी अनुदान घटा रही हैं या खत्म करने की तैयारी में हैं। यह टिप्पणी प्रकारान्तर से शिक्षा के निजीकरण में शिक्षक की भावी स्थिति का पूर्वाभास भी है।

हमारी आशाओं में घुन लगा रहा है हम हताश, निराश और पस्त हैं। जीना हराम हो रहा है और हम बैठे हैं न्यायालय का मुँह ताकते।

हमसे हमारी धूप दिन दहाड़े छीन ली गयी। डर हमारी आत्मा का हिस्सा बन रहा है। उत्साह, उमंग और विश्वास जैसे भावों की अभिव्यक्ति हमसे दूर होती जा रही है। और इनकी जगहें ले रही हैं - अविश्वास, चिंता, परेशानी और कुंठा। चिंताएँ और परेशानियाँ यदि बिल्कुल अपनी और व्यक्तिगत हों तो उनसे जूझा सुलटा जा सकता है पर हमारे सामने हमारा परिवार है, हमारी सामाजिक स्थिति है, अस्मिता है। हम सैकड़ों से शून्य की ओर उतर रहे हैं। कदम-कदम हम हताशा की ओर अग्रसर हो रहे हैं। कब किसका दिमाग कैसे उलट जाये कहना मुश्किल है। हमें डर है हमारी चिंताएँ कैंसर की तरह बढ़कर हमारे मस्तिष्क को न विकृत कर दें।

बहुत अपमान हो रहा है हमारा। बहुत दबाव और धमकियों की जद में हैं हम। हमारे अधिकार साजिश कर छीने जा रहे हैं। सत्ताएँ इस छीना-झपटी में शामिल हैं। न्याय-मंदिर में बहसों उसकी अपनी सुविधा और समय में होंगी। नुक्ते खोजे-ढूँढे जायेंगे। और निर्णय होने तक हमें 50 प्रतिशत वेतन-कटौतियों के बाद बिना वृद्धि, भत्तों और नये वेतनमान के-पर गुजर करना होगा, बिना चीं-चपड़ के।

हमें अपने बच्चों को रद्दी स्कूलों में भर्ती करना पड़ रहा है। हमें मालिक-मकान, दुकानदार, कर्जदार, शंकास्पद दृष्टि से देखने लगे हैं। अब हमारी स्थिति सीना तानकर चलने की नहीं रही। हमारा चूल्हा भभक रहा है। हमारी बिजली कभी भी कट सकती है, घर का सामान कभी भी बाहर फेंका जा सकता है। हम कक्षा में संतुलित आहार के बारे में पढ़ा तो सकते हैं पर उसे अर्जित करने की शक्ति फिलवक्त हममें नहीं रही है। हम अपनी भविष्य-निधि पर वर्तमान सांसे ले रहे हैं। खून के घूंट पीने का अर्थ क्या होता है, हम महसूस कर पा रहे हैं। कितनी ही बातें और हैं .....।

हम क्या करें ..... ?

किससे, कैसे लड़ें, आत्महत्या करें, मरने मारने पर उतारू हो जायें ? बे-वजह छोटी-मोटी बातों पर तो हम बिगड़ने और झगड़ने लगे ही हैं। हमें किस अपराध की सजा मिल रही है ? हम किसे दोषी मानें ? प्रश्नों की लंबी श्रृंखला हमारे दिमाग में बनती रहती है। हमारा भविष्य अतल अंधेरे कुएँ की तरह हमें दिखता है।

पिछले 10, 20, 30, ..... सालों से हम इन संस्थानों में, जिम्मेदार, ईमानदारी से कार्य कर रहे हैं। हमें नहीं पता था, आशंका तक नहीं थी कि हमारे साथ इतना बड़ा छल और कपट होगा। हमारे पैरों के नीचे से सत्ता, हमारी ही जमीन इस तरह खींच लेगी, हमें पता नहीं था।

हमारी अक्ल कुंद हो रही है। हमारे औजार न्यायालय में गिरवी रखे हैं। अपनी कर्तव्यनिष्ठता का फल इतना कसैला और कड़वा होगा - हमें भनक तक नहीं थी।

हादसा अचानक हुआ। उदारवाद के तहत सरकार ने इन संस्थानों को दिये जाने वाले अनुदान में 20 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से कटौती करना शुरू किया। इसे 5 साल में शून्य होना था। विधानसभा में विधेयक बिना बहस आसानी से पारित हो गया। सरकार उच्च न्यायालय में हार गयी पर वह हारना नहीं चाहती, इसलिए सुप्रीम कोर्ट चली गयी। हमें ऐसी सूली पर लटका दिया गया जिसका फंदा कभी भी खिंच सकता है, नहीं भी खिंच सकता। न्यायालय को न्याय के लिए समय की जरूरत है पर समय न तो हमारे पास है, न ही साथ।

किसी ने इस बात का तनिक भी ख्याल नहीं किया कि इस झगड़े का असर किस पर कितना और कैसा होगा। किसके किस अपराध का कौन-सा दण्ड हम अध्यापक पिछले ढाई सालों से भुगत रहे हैं, हम नहीं जानते ?

हमारे नियुक्ति पत्र की इबारत में कहीं नहीं लिखा था कि निरपराध होते हुए, अधिशेष होने पर भी कभी भी तुम्हें बाहर किया जा सकता है। तुम्हारी तनख्वाह काटी जा सकती है, मनमाने तरीके से। हमें वी.आर.एस. की सुविधा भी नहीं है, नहीं तो हम कभी के सरकार और संस्थान से हाथ जोड़ चुके होते। पर नहीं तुम अशासकीय हो, तुम हमारे अनुदान के बल पर पल रहे हो, तुम्हें हमारा हर आदेश शिरोधार्य करना ही होगा।

किसी कर्मचारी को पूरा वेतन, हक सहित मिलना ही चाहिये, यह हमारे संविधान की मंशा जरूर होगी। पर भाषा-छल हमें अटका सकता है, हम नहीं जानते थे। हमें अपना 20 प्रतिशत और अब 50 प्रतिशत वेतन कब और कैसे मिलेगा (यदि जीत गये तो) और कौन उसे देगा, हमें नहीं मालूम ?

हम चिढ़ने और लड़ने झगड़ने लगे हैं। छोटी-छोटी बातों पर उत्तेजना अपने पंख पसार लेती है। कोई कब पागल हो जाये, संत्रास में आत्महत्या कर ले, कहा नहीं जा सकता। शब्द-जुगाली और शब्द-पिटउअल का खेल जारी है। हमें मानसिक रूप से प्रताड़ित

करने का अपराध करने वाला कौन है ? क्या कानून उसे कभी दण्डित कर पायेगा ?

हमें छला गया है - सरे-आम, सरे-बाजार, दिन के उजाले में, हमारी शक्ति जितनी घटेगी, उनका बल उतना बढ़ेगा। यह सत्ता की अवधारणा है। अपनी मजबूरियों में चुप, हम बदहाल हैं। कोई आत्महत्या करेगा तो हमीं जान पायेंगे कि असल में वह धीमा जहर था जो व्यवस्था ने एक अध्यापक को दिया।

“कोई जुम्मेदारी नहीं लेगा इसकी, किसमें सत्ता से टकराने की कूबत है”

जब तक प्रकरण अदालत में नहीं पहुँचा था आंदोलन का जज्बा था, अध्यापक दम साध रहे थे। उस आंदोलन को पछाड़ने और अध्यापकों की हिम्मत पस्त करने के लिए सत्ता ने खेल खेला, साजिश रचीं। पहले अल्पसंख्यक, फिर महिला, फिर हरिजन आदिवासी संस्थाओं को पूरी ग्रांट देने की घोषणा कर आंदोलन से काट दिया।

अब आप ही बतायें - आप अल्पसंख्यक संस्था किसे मानेंगे - उसे जिसमें अल्पसंख्यक विद्यार्थी पढ़ते हैं या उसे जिसका मैनेजमेंट भर अल्पसंख्यक है। एक अल्पसंख्यक अध्यापक सामान्य संस्था में आधा-दूधा वेतन पायेगा और दूसरा सामान्य अध्यापक - अल्पसंख्यक संस्था में पूरा-पूरा। इसी तरह एक महिला अध्यापक, पुरुष विद्यालय में आधा-अधूरा वेतन पायेगी और कोई पुरुष, महिला संस्था में पूरा-पूरा, वह भी भत्तों और अन्य सुविधाओं सहित।

कैसे तय होगा यह मसला ? कोई नहीं जानता।

हम सभी अशासकीय अनुदानी विद्यालयों के शिक्षक कर्मचारी प्रतीक्षारत हैं न्याय पाने, जल्दी ही - देर से नहीं, देर से मिला न्याय - न्याय नहीं अन्याय होता है - अन्याय। जो संविधान और न्याय की मूल मंशा नहीं है।

क्या हमारी अभिव्यक्ति की सारी क्षमताएँ और हथियार योहीं भोँथे होते जंग खा जायेंगे ?

यह प्रश्न हमें बैचन करता है।◆